दैनिक जागरण

खुश रहने का सबसे अच्छा तरीका किसी दूसरे को खुश करना है

नागरिकता विधेयक

नागरिकता संशोधन विधेयक को लेकर जैसा माहौल खड़ा किया गया उसे देखते हुए लोकसभा में उसे लेकर हंगामा होना ही था। केवल कांग्रेस और कुछ अन्य विपक्षी दल ही यह साबित करने पर जोर नहीं दे रहे हैं कि यह विधेयक संविधान विरोधी है। यही काम कई बुद्धिजीवी भी करने में लगे हुए हैं। उनकी मानें तो यह समानता के अधिकारों का हनन करता है, लेकिन वे यह स्पष्ट करने की जरूरत नहीं समझ रहे हैं कि समानता का अधिकार भारतीय नागरिकों पर ही लागू हो सकता है, न कि अन्य देशों के नागरिकों पर। इस विधेयक के जरिये भारत यह तय करने जा रहा है कि वह पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के किन लोगों को नागरिकता प्रदान कर सकता है? यह समझने की जरूरत है कि यह विधेयक दुनिया भर के लोगों को नागरिकता प्रदान करने के लिए नहीं है। इस विधेयक के विरोध में दूसरी बड़ी दलील यह दी जा रही है कि यह धार्मिक आधार पर भेदभाव करता है। निःसंदेह इस विधेयक में पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के अल्पसंख्यक यानी हिंदू, सिख, जैन, बौद्ध, पारसी, ईसाई मत के लोगों को ही नागरिकता देने की व्यवस्था है, लेकिन यदि इन तीनों देशों के मुसलमानों को रियायत नहीं दी गई है तो इसके पीछे ऐतिहासिक कारण और यह तथ्य है कि ये सभी मुस्लिम बहुल देश हैं।

आखिर यह क्यों विस्मृत किया जा रहा है कि देश का विभाजन मजहब के आधार पर हुआ था? इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की अनदेखी क्यों की जानी चाहिए? विडंबना यह है कि इसी के साथ इस तथ्य की भी अनदेखी की जा रही है कि बांग्लादेश से आए लाखों लोगों ने पूर्वोत्तर के कई इलाकों में सामाजिक परिदृश्य इस हद तक बदल दिया है कि स्थानीय संस्कृति के लिए खतरा पैदा हो गया है। वास्तव में इसी कारण पूर्वोत्तर के अधिकांश इलाकों को नागरिकता संशोधन विधेयक के दायरे से बाहर किया गया है। समझना कठिन है कि पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के मुसलमानों को नागरिकता संशोधन विधेयक से बाहर रखने का विरोध करने वाले इसकी अनदेखी क्यों कर रहे हैं कि इस विधेयक में श्रीलंका के तमिल हिंदुओं को कोई रियायत नहीं दी जा रही है। क्या विपक्ष इसकी चर्चा करने से इसीलिए बच रहा है ताकि वोट बैंक की राजनीति करने में आसानी हो? यह ठीक नहीं कि संकीर्ण राजनीतिक कारणों से यह हवा बनाई जाए कि यह विधेयक मुस्लिम विरोधी है। बेहतर हो कि यह हवा बनाने वाले यह स्पष्ट करें कि पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच भेद क्यों नहीं किया जाना चाहिए? भारत कोई धर्मशाला नहीं कि जो चाहे यहां बसने का अधिकारी बन जाए।

सबक लें नौजवान

दिल्ली कमाने गए बिहार के दर्जनों नौजवान अब गांव नहीं लौट पाएंगे। एक अवैध फैक्ट्री की आग ने उन्हें लील लिया। गांव में उनके घरों में मातम पसरा है। पता किया जा रहा कि और कौन-कौन नहीं रहा। एक कमाने वाले से दर्जनों स्वजनों की जिंदगी जुड़ी थी। सब सोच रहे कि उनका क्या होगा? यह कैसी मनहूस खबर आई? क्या से क्या हो गया? यह तो गांव-घर वालों के सवाल हैं। समाज के सवाल भी हैं। कितनी खतरनाक फैक्ट्री थी, निकलने का रास्ता नहीं मिला...। सैकड़ों लोग नौकरी कर रहे थे। वर्षों से कर रहे थे। क्या किसी ने कभी अनहोनी की आशंका नहीं जताई होगी, क्या किसी ने कभी नहीं सोचा होगा कि आग लग गई तो क्या होगा? सुरक्षा नियम का पालन क्यों नहीं हो रहा? सोचा तो जरूर होगा, लेकिन वह मजदूर थे। कुछ नहीं कर सकते थे। उन्हें तो बस महीने का रोजगार मिला था। रोजगार की मजबूरी उन्हें खतरनाक हाल में रहने और काम करने को विवश कर रही थी। जांच-मुआवजा-सजा जैसी प्रक्रियाएं शुरू हो गई हैं। यह सब शोर कुछ दिन रहेगा। हो सकता है कि दिल्ली की तंग गलियों वाले मोहल्ले की कुछ अवैध फैक्टियां बंद हो जाएं, लेकिन देश के विभिन्न हिस्सों में ऐसे ही लाखों फैक्टियां चलती रहेंगी। नगर निगम, श्रम विभाग, नियोजन विभाग, पर्यावरण विभाग, प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड समेत दर्जनों विभाग इनकी निगरानी के लिए काम करते हैं। सवाल है कि वे आखिरकार क्या करते हैं? दिल्ली की घटना ने बिहार के नौजवानों को बड़ा सबक दिया है। नौकरी करने दिल्ली, मुंबई या गुजरात कहीं भी जाएं, जीवन खतरे में पड़ सकता है, ऐसे अवैध संस्थानों से बचें। खतरनाक माहौल वाली संस्थाओं में काम न करें। हकीकत में ऐसा करना मुश्किल जरूर है, लेकिन करना तो होगा। बिहार सरकार को भी कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि राज्य के लोग जहां बड़ी संख्या में नौकरी के लिए जा रहे हों, वहां उनके जानमाल की सुरक्षा के इंतजाम हैं या नहीं, इसकी समय-समय पर जांच कराए और लोगों को जागरूक करे।

दिल्ली की घटना बड़ा सबक है, उन नौजवानों के लिए जो अपनी सुरक्षा को खतरे में डालकर अवैध रूप से चलने वाले खतरनाक संस्थानों में काम कर रहे हैं। विरोध में उन्हें ही पहले आवाज उठानी होगी। इसके साथ ही दिल्ली, मुंबई या गुजरात नौकरी करने जाने वाले नौजवान खतरनाक माहौल वाली संस्थाओं में काम न करें

समस्या की जड़ में जाने से इन्कार

प्रकाश सिंह

महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों के मामले में हम जब तक समस्या के कारणों का निवारण नहीं करेंगे तब तक हालात बदलने वाले नहीं हैं

महिलाओं के खिलाफ बढ़ते अपराधों ने देश की अंतरात्मा को झकझोर दिया है। शायद ही कोई दिन ऐसा होता है, जब अखबार में दुष्कर्म की घटनाएं न छपती हों। हाल की कुछ जघन्य घटनाओं ने विशेष तौर पर देश का ध्यान खींचा है। हैदराबाद में एक महिला के साथ चार लोगों ने सामूहिक दुष्कर्म किया और बाद में उसे जिंदा जला दिया। उन्नाव में एक दुष्कर्म पीड़िता को जिंदा जला दिया गया। त्रिपुरा में एक लड़की को उसके प्रेमी और उसकी मां ने मिलकर जला दिया। वह अस्पताल पहुंचते ही मर गई। राजस्थान के टोंक जिले में एक छह साल की लड़की की दुष्कर्म के बाद हत्या कर दी गई। उसका शव स्कूल से ही आधा किलोमीटर दूर पाया गया। इन अपराधों और विशेष तौर से हैदराबाद और उन्नाव की घटना को लेकर जनमानस बुरी तरह उद्वेलित है। कानून-व्यवस्था के प्रति इतना असंतोष है कि लोगों ने पुलिस द्वारा हैदराबाद में दुष्कर्म के आरोपियों की मुठभेड़ में मौत पर खुशी जाहिर की। जानेमाने लोगों ने तेलंगाना पुलिस की प्रशंसा की। ऐसा होना खतरे की घंटी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लोगों का वर्तमान क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम से विश्वास उठ गया है। अन्य देशों में भी कुछ ऐसा ही वातावरण बन रहा है। स्पेन में एक महिला के साथ हुए दुष्कर्म का वीडियो उसे दिखाकर उसकी प्रतिक्रिया टीवी चैनल पर दिखाई गई। इससे लोगों में भयंकर रोष हुआ। फलस्वरूप जेप्पेलिन टीवी कंपनी, जिसने शो दिखाया था, को क्षमा मांगनी पड़ी। दक्षिण अमेरिका के चिली देश में महिलाओं के एक संगठन ला तेसिस की ओर से बनाया गया वीडियो-'द रेपिस्ट इज यू' चर्चा में है। चिली की राजधानी सैंटियागो में करीब 10 हजार महिलाओं ने काले कपड़े और लाल स्कार्फ पहन कर इस गाने को गाया। इसे सामूहिक रूप से मेक्सिको, पेरिस और बार्सिलोना में भी गाया गया।

वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन ने हाल में महिला अपराध पर एक अध्ययन प्रकाशित किया है जो ईस्टर्न मेडीटेरीनियन हेल्थ जर्नल में छपा है। इसमें कहा गया है कि विश्व भर में महिलाएं, भले ही वह किसी भी वर्ग या समाज की हों, किसी-न-किसी प्रकार की हिंसा का शिकार होती हैं। इस अध्ययन के अनुसार भविष्य में भी स्त्रियों की सुरक्षा एक चिंता का विषय रहेगा। भारत में दुष्कर्म के मामले बढ़ना एक गंभीर चिंता का विषय है। नारी को इस देश में हमेशा सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। दुर्भाग्य से हमारे मूल्यों में इधर इतना ह्रास हो गया है कि नारी को बहुत से लोग अब केवल उपभोग की सामग्री समझने लगे हैं। निर्भया कांड के बाद भारत सरकार ने जस्टिस जेएस वर्मा की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की थी। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से लिखा था कि इन घटनाओं का सबसे बड़ा कारण है देश में सुशासन की कमी। वर्मा कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में 28 पृष्ठ का एक पूरा अध्याय पुलिस सुधार पर लिखा था। कमेटी ने राज्य सरकारों से आग्रह किया था कि वह पुलिस सुधार संबंधी सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का तत्काल पालन करे। वर्मा कमेटी की यह सोच थी कि जब तक पुलिस में मूलभूत सुधार नहीं होंगे, तब तक वह महिला सुरक्षा या अन्य समस्याओं से निपटने के लिए सक्षम नहीं होगी।

अवधेश राजपूत

सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस सुधार को लेकर 2006 में आदेश निर्गत किए थे। 13 वर्ष बीत चुके हैं, परंतु राज्य सरकारों का रवैया आज भी नकारात्मक है। कागज पर दिखाने के लिए तो उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का अनुपालन कर लिया है, परंतु अगर बारीकी से देखा जाए तो सारा अनुपालन फर्जी है। जमीन पर अभी भी कुछ नहीं बदला है। पुलिस की पुरानी लचर व्यवस्था चली आ रही है। ऐसा नहीं है कि सरकार ने कुछ नहीं किया है। गृह मंत्रालय ने समय-समय पर राज्य सरकारों को महिला सुरक्षा के बारे में निर्देश भेजे हैं। हाल में गृह सचिव ने सभी मुख्य सचिवों को एक पत्र भेजा है जिसमें उन्होंने विशेष तौर से यह सुझाव दिया कि सभी राज्य पुलिस सीसीटीएनएस के इन्वेस्टिगेशन ट्रैकिंग सिस्टम फॉर सेक्सुअल ऑफेंसेज पोर्टल का प्रयोग करें, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि महिला संबंधी अपराधों की विवेचना दो महीनों में समाप्त हो। कानून मंत्री रविशंकर प्रसाद ने भी सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीशों को एक पत्र लिखा है कि दुष्कर्म के मामलों की जांच दो माह में और सुनवाई अधिकतम छह माह में पूरी कर ली जाए। मंत्री महोदय के अनुसार देश में चल रहे 704 फास्ट ट्रैक कोर्ट के अतिरिक्त 1023 और नए फास्ट ट्रैक कोर्ट बनाए जाएंगे। आशा की जा सकती है कि इससे स्थिति में कुछ सुधार होगा।

महिलाओं के विरुद्ध अपराध के दो पहलू होते हैं। एक तो अपराध का होना और दूसरा अपराध होने के बाद प्रशासनिक/पुलिस कार्रवाई। आजकल अपराध के बाद के घटनाक्रम पर विशेष तौर से चर्चा होती है। जैसे कि पुलिस ने रिपोर्ट लिखने में कोताही की, पीड़िता को एक थाने से दूसरे थाने दौड़ना पड़ा, पुलिस ने पीड़िता को संरक्षण नहीं दिया, आरोपियों की स्थानीय नेताओं से साठगांठ थी। ऐसी चर्चा के बीच न्याय प्रक्रिया वर्षों तक चलती रहती है और इसका ठिकाना नहीं रहता कि दंड कब मिलेगा? अपराध होते क्यों हैं, इस पर गंभीरता से कोई नहीं सोचता। जब तक हम समस्या की जड़ में नहीं जाएंगे तब तक यह सिलसिला इसी तरह चलता रहेगा। हमें मूल्य और संस्कार मुख्य रूप से दो स्तर पर मिलते हैं। पहले तो परिवार में और बाद में शिक्षण संस्थानों में। आज परिवार में न तो माता-पिता अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं और न ही स्कूल-कॉलेज में अध्यापक गण। मूल्यों का सर्वथा अभाव है। माता-पिता चाहते हैं कि लड़का अच्छे स्कूल में जाए, अच्छे नंबर से पास हो और उसकी अच्छी नौकरी लग जाए। वह लायक बने, अच्छा नागरिक हो, देशभक्त हो, ऐसी कोई शिक्षा नहीं दी जाती। शिक्षण संस्थानों की आजकल जो दुर्गति है, सभी को मालूम है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से सारा वातावरण व्याप्त है। और आगे बढ़ें तो हम देखते हैं कि राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों का प्रतिनिधित्व बढ़ता जा रहा है।

यह सब हमारी भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणादायक नहीं है। सबसे ज्यादा गदर मचा रखा है इंटरनेट पर उपलब्ध अश्लीलता ने। सरकार को इसे रोकने या कम-से-कम इस पर अंकुश लगाने के बारे में सोचना चाहिए। हाल में एक खबर आई कि पटना स्टेशन पर वाई-फाई मुफ्त हो गया है। नतीजतन अधिकांश लोग पोर्नोग्राफी देख रहे थे। इनसे आप क्या उम्मीद करते हैं। क्या ये माला जपेंगे? एक तरफ हम ज्वलनशील पदार्थ इकट्ठा करते हैं और दूसरी तरफ चिल्लाते हैं, 'आग लगी है, आग लगी है।' इसे संकुचित सोच नहीं तो और क्या कहेंगे। महाभारत में तो केवल एक द्रौपदी रो रही थी, आज हजारों द्रौपदियां भयभीत होकर रो रही हैं।

(लेखक उत्तर प्रदेश एवं असम के पुलिस महानिदेशक रह चुके हैं)

response@jagran.com

समान नागरिक संहिता में बेवजह की देरी

नाइश हसन

समान संहिता के अभाव में उन महिलाओं के सामने कोई रास्ता नहीं है जो भेदभावपूर्ण कानूनों की जकड़न से ग्रस्त हैं

एक अर्से से विभिन्न स्तरों पर समान नागरिकता संहिता को लेकर चर्चा हो रही है। हाल में संविधान दिवस के अवसर पर यह मांग तेज हुई कि अब समान नागरिक संहिता लागू करने का समय आ गया है। इस मांग का कारण यह रहा कि 23 नवंबर, 1948 को लंबे बहस-मुबाहिसे के बाद संविधन में अनुच्छेद 44 को शामिल किया गया था। अनुच्छेद 44 यही कहता है कि भारत के सभी नागरिकों के लिए उनके धर्म , क्षेत्र, लिंग, भाषा आदि से ऊपर एक समान नागरिक कानून लागू किया जाए। संविधान सभा ने इसका निर्देश भी सरकार को दिया था। वैसे तो भारतीय नागरिकों के लिए एक समान कानून हैं, लेकिन उत्तराधिकार, विवाह, तलाक और बच्चों के संरक्षण के मामले में विभिन्न समुदायों के लिए अलग-अलग कानून हैं और वे नाइंसाफी पर टिके हैं। सरकारें आईं और चली गईं, लेकिन किसी सरकार ने समान नागरिक संहिता का मसौदा तक तैयार करने की जहमत नहीं उठाई है। उन सरकारों ने भी ऐसा नहीं किया जिसके नेता समान नागरिक संहिता की पैरवी करते रहे। जब भी समान नागरिक संहिता का सवाल उठा उसे अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक की बहस और अन्य बेजा दलीलों से उलझा दिया गया। जो बहस हुई भी उसका अंत हमेशा दोषारोपण के साथ हुआ।

यह समझने की जरूरत है कि यदि पारिवारिक कानून इंसाफ पसंद हों तो इसका सबसे अधिक लाभ महिलाओं को मिलेगा। आए दिन महिलाओं के खिलाफ होने वाली घटनाएं यही बताती हैं कि सभी समुदायों की महिलाओं के साथ किसी न किसी स्तर पर नाइंसाफी हो रही है। परिवार के भीतर महिला अधिकारों के सवाल को धार्मिक चिंताओं के दायरे से बाहर खींचकर एक मानवाधिकार के सवाल के रूप में स्थापित करना बेहद जरूरी है। मानवाधिकारों की सही रक्षा तभी संभव है जब समान नागरिकता संहिता लागू हो। अनुच्छेद 44 पर बहस के दौरान बाबा साहब आंबेडकर ने कहा था कि धर्म को इतना विस्तृत और व्यापक क्षेत्र क्यों दिया जाना चाहिए कि वह संपूर्ण जीवन पर कब्जा कर ले और विधायिका को इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने से रोके?

चूंकि धर्म पितृसत्तात्मक विचारधारा में गहरी जड़ें रखता है इसलिए स्त्री और पुरुष के बीच आधारभूत शक्ति असंतुलन पर चोट नहीं की जा सकती। राज्य बनाम समुदाय और समुदाय बनाम महिला का ध्रुवीकरण तोड़ने की जरूरत है। तीन तलाक पर उठी बहस में हमने देखा था कि महिलाओं को कमअक्ल और जज्बाती बताकर तीन तलाक को बनाए रखने के लिए धर्मगुरु किस तरह दलीलें पेश कर रहे थे। वे मुस्लिम महिलाओं को हमारी औरतें बता रहे थे। कुछ ऐसा ही रवैया 1955 में हिंदू कोड बिल के समय दिखाया गया था। इस कानून के विरोध में अजीब-अजीब तर्क दिए जा रहे थे। किसी ने कहा कि यह पूरे हिंदू समाज के ढांचे को ध्वस्त करने की साजिश है तो किसी ने कहा कि परिवार में स्त्री और पुरुष की भूमिकाएं और जवाबदेही अलग-अलग हैं, इसलिए दोनों को समान अधिकार देने का कोई औचित्य ही नहीं।

कोई भी समुदाय हो, उसकी महिलाएं उस समुदाय के पुरुषों के लिए भेड़-बकरियां नहीं होतीं। मुश्किल यह है कि पुरुष चरवाहे की तरह धर्म के डंडे के सहारे उन्हें हांकना चाहते हैं। समान नागरिक संहिता पर अब तक महिला आंदोलन के बाहर जो भी बहस हुई है वह धार्मिक पहचान के संकट, वोट की राजनीति, तुष्टीकरण के इर्द-गिर्द ही घूमती रही है। अफसोस की बात यह रही कि जिसके न्याय के लिए यह बहस प्रारंभ हुई वह यानी महिला ही उसके केंद्र से गायब रही। समान संहिता की जरूरत को न्याय से नहीं जोड़ा गया। कभी यह बहस अल्पसंख्यक वोटों की गोलबंदी करती नजर आती रही तो कभी वोटों को लिए बहुसंख्यक समुदाय की भावनाओं को भुनाती हुई। समझना कठिन है कि समान नागरिक संहिता की बहस में धर्मगुरु क्यों कूद पड़ते हैं? पता नहीं वे किस आधार पर समान नागरिक संहिता को धर्म में छेड़छाड़ बताने लगते हैं? इसका नतीजा यह होता है कि हम समाधान की ओर नहीं बढ़ पाते। देश की दो बड़ी सियासी पार्टियों कांग्रेस और भाजपा, दोनों ने इस मुद्दे को सांप्रदायिक रंग ही अधिक दिया है। लैंगिक समानता पर आधारित एक समान संहिता बने, यह महिला आंदोलन की एक पुरानी मांग है। ऐसी किसी संहिता के अभाव में उन महिलाओं के सामने कोई रास्ता नहीं बचता जो भेदभावपूर्ण पारिवारिक कानूनों की जकड़न से ग्रस्त हैं।

समान नागरिक संहिता तैयार करना न तो किसी धार्मिक पहचान पर आक्रमण है न ही इससे किसी तरह का कोई नुकसान है। इसे टच मी नॉट बना कर देखना गलत है। गौर कीजिए, सुप्रीम कोर्ट ने एक नहीं अनेक मौकों पर समान नागरिक संहिता की वकालत की है। 1985 में शाहबानों के केस में भी सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि यह दुख का विषय है कि हमारे संविधान का अनुच्छेद 44 मृत होकर रह गया है। इसके बाद 1995 में सरला मुदगल केस में भी सुप्रीम कोर्ट ने पूछा था कि संविधान के अनुच्छेद 44 के लिए संविधान निर्माताओं की इच्छा को पूरा करने में सरकार को अभी कितना और समय लगेगा? 2003 में जॉन बलवत्तम केस में सुप्रीम कोर्ट ने फिर कहा कि यह दुख की बात है कि संविधान के अनुच्छेद 44 को अभी तक लागू नहीं किया गया। 2017 में भी शीर्ष अदालत में यह मुद्दा उठा। इसके अलावा भी सुप्रीम कोर्ट ने कई बार यह सवाल उठाया कि अभी तक सरकार की ओर से समान नागरिक संहिता को लेकर कोई प्रयास क्यों नहीं किया गया? इसके विरोध में तर्क देने वाले लोग हमेशा अनुच्छेद 25 अर्थात धार्मिक आजादी का सवाल उठाते हैं, लेकिन उसी में दर्ज है कि कुप्रथा और भेदभाव को धार्मिक आजादी नहीं माना जा सकता। ऐसा कानून बनाने की मांग एक जायज मांग है जो न्याय को धार्मिक मान्यताओं के आधार पर नहीं, बल्कि भारत के नागरिकों के हितों को ध्यान में रखकर परिभाषित करे। न्याय वही है जो धार्मिक संदर्भ देखे बिना मानवीय आधार पर हो सके। लैंगिक समानता पर आधारित समान नागरिक संहिता के सवाल पर देश में बहस इस इरादे की जानी चाहिए ताकि महिलाओं को भेदभाव से मुक्ति मिल सके।

(लेखिका महिला अधिकार कार्यकर्ता हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

नारी-सम्मान

एक बार किसी ने आदिगुरु शंकराचार्य से एक व्यक्ति का नाम लेकर कहा गया कि वे आपके लिए अमर्यादित शब्दों का प्रयोग कर रहे थे। इस पर आदिगुरु ने कहा-'नहीं नहीं, वे मेरे लिए अपशब्दों को प्रयोग नहीं कर रहे थे, क्योंकि यदि मेरे पंचभूत शरीर के लिए कुछ कह रहे थे तो यह तो निंदनीय है ही। इसके अंदर गंदगी ही भरी है और यदि इसमें विद्यमान आत्मा की निंदा कर रहे थे तो जो ईश्वरीय अंश मुझमें है वही सब में है।' यदि इस प्रकार का विवेक किसी में जागृत हो जाए तो फिर उसे दुनिया की कोई ताकत प्रभावित नहीं कर सकती, क्योंकि दैहिक आकर्षण में कितने बर्बाद हो जाते हैं।

धर्मग्रंथों में कामदेव द्वारा बाण चलाने का प्रसंग आता है। जब कामदेव ने महादेव की तपस्या रूपी विवेक को ध्वस्त करने के लिए बाण चलाया तो महादेव ने कामदेव के बाण को ध्वस्त कर दिया, लेकिन गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं कि कामदेव के बाण चलते ही पूरी सृष्टि काममय हो गई। कामदेव के बाण से जो तरंगें निकलीं, उसकी चपेट में सब आ गए। उक्त धार्मिक कथा को वर्तमान संदर्भों में देखा जाए तो तमाम इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से काम-भावना ही नहीं, अश्लीलता की तरंगें वायुमंडल में प्रवाहित हो रही हैं और उसकी चपेट में विभिन्न आयु वर्ग के लोग आ रहे हैं। लिहाजा जिस देश ने नारी की पूजा को सर्वश्रेष्ठ बताया और जहां नारी सम्मान होता है वहां देवताओं का वास बताया गया, उस देश में आए दिन नारी मर्यादा के चीरहरण की घटनाएं हो रही हैं। ऐसी स्थिति में परिवार का दायित्व बढ़ जाता है कि मर्यादा के लिए परिवारी जन सजग रहें। वर्तमान भौतिकवादी युग में घर के जिम्मेदार लोग सुबह उठने से लेकर रात सोने तक पैसे के पीछे भाग रहे हैं। घर के सदस्यों में तादात्म्य नहीं बन पा रहा है। चतुर्दिक नारी सम्मान पर आघात पहुंच रहा हैं।

अतः इस पर रोकथाम के लिए घर के वरिष्ठ लोग कनिष्ठ सदस्यों को नैतिक शिक्षा दें, तभी देश, समाज और परिवार की मर्यादा बनी रहेगी। भारत को विश्व में श्रेष्ठ रहना है तो नारी सम्मान को वरीयता देनी ही होगी।

सलिल पांडेय

भारत में गहरी हैं मानवाधिकार की जड़ें

चंदन कर्ण

भारत में मानवाधिकार की अवधारणा उतनी ही पुरानी है जितनी कि इसकी सभ्यता और संस्कृति

मानवाधिकार एक व्यापक अवधारणा है, जो मनुष्य मात्र को बिना किसी भेदभाव के सम्मान के साथ जीने का अधिकार सुनिश्चित करता है। पश्चिमी विचारकों ने मानवाधिकार का प्रथम लिखित दस्तावेज 1215 में ब्रिटेन के शासक जॉन द्वारा कतिपय मानव अधिकारों को मान्यता देने वाले उस घोषणापत्र को माना है, जो विश्व भर में मैग्नाकार्टा के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तर आधुनिक युग में द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका, जिसमें मानवीय मूल्यों की अपरिमित क्षति हुई थी, के उपरांत संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 10 दिसंबर, 1948 को एक प्रस्ताव पारित करके मानवाधिकारों की वैश्विक घोषणा को अंगीकार किया गया। भारत उन शुरुआती देशों में शामिल था, जिसने इस घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए थे।

यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि भारत में मानवाधिकार की अवधारणा उतनी ही पुरानी है जितनी कि इसकी सभ्यता और संस्कृति। हमारे ऋषि-मुनियों ने अपनी ऋचाओं में मानव अधिकार से भी एक कदम आगे बढ़ते हुए सभी जीव-जंतुओं के सुखी और स्वस्थ होने की कामना की है। सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया। उन श्रेष्ठ जनों ने विश्व के सभी कोनों से आने वाले कल्याणकारी विचारों का स्वागत किया था। तुलसी के रामराज्य में तो बैर और विषमता का कोई स्थान ही नहीं था। कालानुक्रम में हमारी सनातन संस्कृति पर हमले हुए, उसे असंख्य घाव दिए गए। तब भी हमने पूरी मानव जाति की भलाई के लिए अपनी प्रार्थनाओं को विराम नहीं दिया। तब भी नहीं जब पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान के रूप में दोनों बाहें हमसे अलग हो गईं। इसके विपरीत आजादी के बाद ही पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान (आधुनिक बांग्लादेश) में रह गए हिंदुओं, सिखों सहित सभी अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों को सुनियोजित रूप से कुचला गया। न सिर्फ उनकी संपत्तियों को लूटा गया, बल्कि बड़ी संख्या में उनकी हत्याएं भी की गईं।

उल्लेखनीय है कि 1947 में हिंदुओं की जनसंख्या पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान में क्रमशः 19 प्रतिशत और 30 प्रतिशत थी, जो इस समय घटकर एक प्रतिशत और आठ प्रतिशत के करीब है। सिख समुदाय तो पाकिस्तान में आज महज 20 हजार के लगभग रह गया है। हिंदुओं और सिखों की भांति ही ईसाइयों को भी इन धर्मशासित देशों में भेदभाव और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा है। निहायत ही अफसोस की बात है कि विश्व भर में अल्पसंख्यकों की आवाज उठाने वाले मानवाधिकार के तमाम संगठन अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश में अल्पसंख्यकों के साथ किए जा रहे उत्पीड़न की घटनाओं पर खामोश हैं। ऐसे में भारत सरकार के उस कदम की सराहना की जानी चाहिए, जिसके अंतर्गत वह उक्त तीनों देशों के प्रमुख अल्पसंख्यक समुदायों को आसान शर्तों पर भारत की नागरिकता देने पर विचार कर रही है। यह विचार मानवीय मूल्यों को सम्मान देने की प्राचीन भारतीय अवधारणा के अनुकूल भी है और वैश्विक मानवाधिकार के प्रति भारत के समर्पण का एक श्रेष्ठ उदाहरण भी।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

राष्ट्रहितैषी दृष्टि से देखें नागरिकता विधेयक

नागरिकता निर्धारण का सही तरीका शीर्षक से युक्त अपने लेख में संजय गुप्त ने नागरिकता विधेयक पर जिस राष्ट्रहितैषी दृष्टि से बहस की अपेक्षा की है, वह वोटबैंक की दूषित राजनीति के चलते भले ही संभव न हो सके, लेकिन इस विधेयक के पारित होने पर यदि नागरिकता निर्धारण का कानून बनता है तो यह देश के हित में जरूर होगा। पिछले 70 वर्षों से जिन विवादित मुद्दों पर पिछली केंद्र सरकारों ने चुप्पी साध रखी थी, मोदी सरकार ने उन्हें बहुत करीने से हल करके यह साबित कर दिया कि यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति हो तो सब कुछ संभव है। इस देश में अनुच्छेद-370 और 35-ए को खत्म करना भी ऐसा ही असंभव मुद्दा माना जाता था, जिसे प्रधानमंत्री मोदी ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से संभव बनाकर, कश्मीर में अलगाववाद और आतंकवाद की आग भड़काने वाले पाकिस्तान को आईना दिखा दिया। नागरिकता निर्धारण भी ऐसा ही जटिल मुद्दा है जिसे विपक्ष हिंदू-बनाम मुस्लिम के रूप में पेश करके देश के पंथनिरपेक्ष चरित्र से जोड़ने की कोशिश कर रहा है, जबकि भारत की नागरिकता से जुड़े इस मुद्दे पर विपक्ष को वोटबैंक की दूषित राजनीति से परे होकर राष्ट्रहितैषी दृष्टि से सकारात्मक रुख अपनाना चाहिए। क्योंकि एक लंबे समय से धर्मशाला बने इस देश में हर कोई अवैध रूप से घुसपैठ करके देश के संसाधनों पर अपना हक जताता रहा है। भारत की असंतुलित होती जनसांख्यिकी के मूल में यही अवैध घुसपैठ है। इनमें मुस्लिम देशों में प्रताड़ित होने वाले कुछ हिंदू भी हैं जो अपनी जीवन रक्षा के लिए भारत में शरणार्थी बनकर रह रहे हैं। मोदी सरकार नागरिकता निर्धारण कानून बनाकर ऐसे सभी प्रताड़ित शरणार्थियों को भारत का नागरिक घोषित करके शेष अवैध घुसपैठियों को गैर भारतीय घोषित करना चाहती है। ऐसे में इन गैर भारतीयों को अन्य नागरिक सुविधाओं से वंचित होकर अपने वोट डालने के अवैध अधिकार से भी वंचित होना पड़ेगा।

pandeyvp1960@gmail.com

मौत का जिम्मेदार कौन

दिल्ली के फिल्मिस्तान के पास अनाज मंडी में हुए अग्निकांड में बड़ी संख्या में लोगों की मौत के लिए आखिर जिम्मेदार कौन है? वे लोग जो वहां कारोबार कर रहे थे अथवा सरकार जिसने तंग इलाकों में चल रहे कारोबार पर कोई रोक नहीं लगाई? शायद दोनों ही जिम्मेदार हैं। लेकिन इसका खामियाजा तो निर्दोष काम करने वाले लोगों को भुगतना पड़ा। उनका कसूर यही था कि वे अपनी रोजी रोटी के लिए जान जोखिम में डालकर ऐसे इलाकों में काम कर रहे थे। दिल्ली के विभिन्न इलाकों की तंग गलियों में ऐसे ही हाल हैं। कोई घटना होने के बाद प्रशासन जगता है, फिर वहीं स्थिति बन जाती है। इसका स्थायी समाधान होना चाहिए।

बालकृष्ण अमरसरिया, दिल्ली

पुख्ता इंतजाम हों

दिल्ली के रानी झांसी रोड स्थित अनाज मंडी इलाके की एक बिल्डिंग में अनेक लोगों का अग्नि तांडव में काल कवलित हो जाना मानवता के लिए बहुत बड़ी क्षति है। इसमें लापरवाही बरतने वाले कठोर दंड के भागीदार हैं। साथ ही शासन प्रशासन की उन नीतियों पर भी प्रश्नचिन्ह है जिनके चलते ऐसी फैक्ट्रियों में अवैध धंधे चल रहे हैं, जहां पर सुरक्षा के इंतजाम नाकाफी होते हैं। ऐसी दुर्घटना की पुनरावृत्ति ना हो इसके लिए प्रशासन को पुख्ता इंतजाम करने चाहिए।

युगल किशोर शर्मा, खांबी, फरीदाबाद

गलत वेबसाइट पर रोक लगे

आजकल सोशल मीडिया का बहुत जोर है। हर कोई इस पर सक्रिय है। यह हमारे लिए कुछ मामलों में फायदेमंद है, लेकिन कुछ में नुकसानदायक भी। इसके जरिये हम अपनी यादें एक दूसरे से बांट सकते हैं। लेकिन देखने में आ रहा है कि इसका दुरुपयोग ज्यादा हो रहा है। इसमें बहुत सी गलत जानकारी भी डाली जा रही है। बच्चे-बड़े सभी इसमें व्यस्त रहते हैं। परिवार में साथ बैठे सदस्य भी एक दूसरे से बात करने के बजाय मोबाइल में उलझे रहते हैं। इससे जहां लोगों में दूरी बन रही है, वहीं मोबाइल के अधिक इस्तेमाल से तमाम मानसिक बीमारियों का खतरा बढ़ रहा है। बच्चे ज्यादातर गलत बेवसाइट का इस्तेमाल करते हैं। सरकार को चाहिए कि ऐसे गलत बेवसाइट पर रोक लगाए।

मो. जमील, नई दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर स